[2021] 10 S.C.R. 864

जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य बनाम

डॉ. सलीम उर रहमान

(आपराधिक अपील संख्या 1170 वर्ष 2021)

29 अक्टूबर, 2021

[न्यायमूर्ति एम आर शाह और न्यायमूर्ति ए.एस. बोपन्ना]

जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006: धारा 3, दूसरा प्रावधान, धारा 5(1)(द) पढ़ते हुए 5(2) - पुलिस अधीक्षक द्वारा अन्वेषण करने वाले निरीक्षक को प्रथम सूचना रिपोर्ट में उक्त अपराधों के संबंध में अनुमति - अनुमति में कारण बताने की आवश्यकता - निर्णय: यह नहीं कहा जा सकता कि पुलिस अधीक्षक द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में उक्त अपराधों के संबंध में निरीक्षक को अन्वेषण करने की अनुमति देते समय उनके द्वारा मन का अनुप्रयोग नहीं किया गया - उक्त अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने के लिए अधिकृत निरीक्षक को आरोपी व्यक्तियों को आवश्यकतानुसार कभी भी और कहीं भी गिरफ्तार करने का भी अधिकार दिया गया था - उक्त अनुमति में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि वह पुलिस अधीक्षक के पर्यवेक्षण में मामले का अन्वेषण करेगा - अतः पुलिस अधीक्षक द्वारा निरीक्षक को प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने की अनुमति देते समय सभी सावधानियां बरती गईं - वैसे भी, धारा 3 के दूसरे प्रावधान का सरल पठन दर्शाता है कि केवल दो आवश्यकताओं का पालन करना आवश्यक है, अर्थात्, (i) सतर्कता संगठन के ऐसे अधिकारी द्वारा, जो पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे न हो, पुलिस उपनिरीक्षक के पद से नीचे न होने वाले अधिकारी को ऐसे अपराधों का अन्वेषण करने की लिखित अनुमति; तथा (ii) अधिकृत ऐसा अधिकारी अनुमति आदेश में निर्दिष्ट अपराधों का अन्वेषण कर सके - अतः, इस प्रकार, न तो विशेष कारण बताने की आवश्यकता है और न ही कारणों का उल्लेख करने की आवश्यकता है - जो विचारणीय है वह यह है कि अपराधों तथा अनुमति के संबंध में संबंधित प्रावधानों के प्रति मन का अनुप्रयोग है या नहीं - उपरोक्त अनुमति को ध्यान में रखते हुए, यह

नहीं कहा जा सकता कि निरीक्षक को प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने की ऐसी अनुमति दोषपूर्ण है या शून्य है, जो समस्त आपराधिक कार्यवाही सहित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने का आधार बने - रणवीर दंड संहिता - धारा 120-बी।

जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006: धारा 155 - का अ-पालन - विवादित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने अवलोकन किया कि किसी अन्वेषण एजेंसी द्वारा गैर-जानबूझकर अपराध सहित अपराधों के समूह का अन्वेषण करने के लिए, उसे अन्वेषण आरंभ करने से पूर्व संबंधित मजिस्ट्रेट से अनुमति प्राप्त करनी चाहिए और वर्तमान मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट से ऐसी कोई अनुमति प्राप्त नहीं की गई - उचितता - निर्णय: प्रतिवादी के विरुद्ध मुख्य अपराध जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के अंतर्गत थे और अधिनियम की धारा 3 के अनुसार अधिनियम के अंतर्गत सभी अपराध संज्ञेय तथा गैर-जमानती हैं - अतः, उक्त मुद्दा प्रवीण चंद्र मोदी मामले में इस न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत प्रतिवादी के विरुद्ध पूर्णतः कवर है, जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि जहां सूचना संज्ञेय तथा गैर-संज्ञेय दोनों अपराधों का खुलासा करती है, वहां पुलिस अधिकारी को एक ही तथ्यों से उत्पन्न होने वाले किसी गैर-संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने से निषेध नहीं किया जाता और वह संज्ञेय अपराध के लिए प्रस्तुत आरोप-पत्र में उस गैर-संज्ञेय अपराध को सम्मिलित कर सकता है - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध एक मुख्य अपराध है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध के संबंध में अन्वेषण, जब साजिश के अपराध के साथ संयुक्त रूप से विचार किया जाए, तो मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं है - केवल इसलिए कि साजिश का अपराध सम्मिलित हो सकता है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत जो अपराध संज्ञेय है, उसके अन्वेषण को मजिस्ट्रेट से अनुमति की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे काफी विलंब होगा और अन्वेषण प्रभावित होगा तथा अन्वेषण पटरी से उतर जाएगा - अतः, उच्च न्यायालय ने धारा 120बी के अपराध को गैर-संज्ञेय बताते हुए जम्मू एवं कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अंतर्गत आवश्यक पूर्व अनुमति प्राप्त न करने के आधार पर आपराधिक कार्यवाही रद्द करने में त्रुटि की।

सतर्कता मैनुअल, 2008: नियम 3.16 - वैधता - नियम 3.16 का निकट पठन दर्शाता है कि इसे आरोपी तथा/या जिस व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाए गए हैं उसके हित में तथा

आरोपी को तुच्छ शिकायतों से संरक्षित करने के लिए कहा जा सकता है - खंड 3.16 के अनुसार केवल प्रारंभिक जांच के संपन्न होने तथा प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की आवश्यकता है - अपराधों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विस्तृत जांच आवश्यक है तथा इसलिए खंड 3.16 में अवलोकन किया गया है कि प्रारंभिक जांच सामान्यतः छह मास की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए - ललिता कुमारी मामले में प्रतिपादित विधि के अनुसार प्रारंभिक जांच करवाने से आरोपों के गुण-दोष पर विस्तृत अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है तथा ऐसी जांच सात दिनों की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए, तथापि यह नहीं निर्णय दिया गया कि यदि प्रारंभिक जांच सात दिनों की अवधि में पूर्ण न की गई तो समस्त आपराधिक कार्यवाही शून्य हो जाएगी तथा उन्हें रद्द किया जाना चाहिए - नियम 3.16 को इस न्यायालय द्वारा ललिता कुमारी मामले में प्रतिपादित अवलोकनों तथा विधि के अनुरूप कहा जा सकता है।

सतर्कता मैनुअल, 2008: नियम 3.16 - प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करते समय कुछ जांच/अन्वेषण अवश्य होना चाहिए, तथापि वह केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही होगा - प्रारंभिक जांच के चरण में जो भी जांच की जाती है, कल्पना की किसी भी सीमा से परे, उसे दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अन्वेषण नहीं माना जाएगा जो केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के पश्चात् हो सकता है - वैसे भी, केवल इसलिए कि प्रारंभिक जांच करते समय प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों में विस्तृत जांच की गई जो केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही कही जा सकती है तथा केवल इसलिए कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पूर्व प्रारंभिक जांच में कुछ अधिक समय लिया गया, समस्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता - प्रारंभिक जांच के चरण में आरोपी को कोई पूर्वाग्रह नहीं पहुंचना चाहिए जो केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के पश्चात् आगे अन्वेषण की आवश्यकता है या नहीं, यह संतुष्ट करने के उद्देश्य से ही होगा - अतः, उच्च न्यायालय ने खंड 3.16 को विधि के विपरीत घोषित करने में सामग्री त्रुटि की।

दायित्व: मुख्य षड्यंत्रकारियों के अभाव में प्रतिवादी का परोक्ष दायित्व - प्रतिवादी के विरुद्ध आरोप उसके व्यक्तिगत स्वरूप के संबंध में हैं - अतः, परोक्ष दायित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

अपील को स्वीकार करते हुए,

न्यायालय ने निर्णय दिया: 1.1 यह नहीं कहा जा सकता कि पुलिस महानिरीक्षक द्वारा निरीक्षक 'एनएच' को जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(द) पढ़ते हुए 5(2) तथा रणवीर दंड संहिता की धारा 120-बी के अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने की अनुमति देते समय उनके द्वारा मन का कोई अनुप्रयोग नहीं किया गया। उक्त अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने के लिए अधिकृत निरीक्षक 'एनएच' को आरोपी व्यक्तियों को आवश्यकतानुसार कभी भी और कहीं भी गिरफ्तार करने का भी अधिकार दिया गया था। उक्त अनुमति में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि वह पुलिस अधीक्षक (बीकेबी) के पर्यवेक्षण में मामले का अन्वेषण करेगा। अतः, जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने के लिए निरीक्षक 'एनएच' को अनुमति देने वाले पुलिस महानिरीक्षक द्वारा सभी सावधानियां बरती गईं। [अनुच्छेद 8.6][893-जी-एच; 894-ए-बी]

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 सप्ले. (1) एससीसी 335: 3 सप्ले. एससीआर 259; *मध्य प्रदेश राज्य बनाम राम सिंह* (2000) 5 एससीसी 88: 1 एससीआर 579 - पर भरोसा किया गया।

1.2 वैसे भी, धारा 3 के दूसरे प्रावधान का सरल पठन दर्शाता है कि केवल दो आवश्यकताओं का पालन करना आवश्यक है, अर्थात्, (i) सतर्कता संगठन के ऐसे अधिकारी द्वारा, जो पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे न हो, पुलिस उपनिरीक्षक के पद से नीचे न होने वाले अधिकारी को ऐसे अपराधों का अन्वेषण करने की लिखित अनुमति; तथा (ii) अधिकृत ऐसा अधिकारी अनुमति आदेश में निर्दिष्ट अपराधों का अन्वेषण कर सके। अतः, इस प्रकार, न तो विशेष कारण बताने की आवश्यकता है और न ही कारणों का उल्लेख करने की आवश्यकता है। विचारणीय यह है कि अपराधों तथा अनुमति के संबंध में प्रासंगिक प्रावधानों के प्रति मन का अनुप्रयोग है या नहीं। उपरोक्त अनुमति को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(द) पढ़ते हुए 5(2) तथा आरपीसी की धारा 120बी के अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण करने के लिए निरीक्षक 'एनएच' को अधिकृत करने वाली ऐसी अनुमति दोषपूर्ण अथवा शून्य कही जा सकती है जो समस्त आपराधिक

कार्यवाही सहित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने का आधार बने। अतः, इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने निरीक्षक 'एनएच' के पक्ष में अनुमति को विधि के विरुद्ध मानते हुए भजन लाल मामले में इस न्यायालय के अवलोकनों पर भरोसा करके समस्त आपराधिक कार्यवाही रद्द करने में गंभीर त्रुटि की, जिसकी व्याख्या इस न्यायालय द्वारा राम सिंह मामले में उपरांत की गई। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा धारा 3 के दूसरे प्रावधान के सहित अनुमति को ध्यान में रखते हुए, अनुमति को अवैध अथवा अमान्य नहीं कहा जा सकता। [अनुच्छेद 8.6][894-सी-जी]

2.1 अब जम्मू एवं कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अ-पालन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष के संबंध में, उच्च न्यायालय ने अवलोकन किया कि किसी अन्वेषण एजेंसी द्वारा गैर-संज्ञेय अपराध सम्मिलित अपराधों के समूह का अन्वेषण करने के लिए, उसे अन्वेषण आरंभ करने से पूर्व संबंधित मजिस्ट्रेट से अनुमति प्राप्त करनी चाहिए और वर्तमान मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट से ऐसी कोई अनुमति प्राप्त नहीं की गई, प्रतिवादी के विरुद्ध मुख्य अपराध जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के अंतर्गत थे तथा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार अधिनियम के अंतर्गत सभी अपराध संज्ञेय तथा गैर-जमानती हैं। अतः, उक्त मुद्दा इस न्यायालय के प्रवीण चंद्र मोदी मामले के निर्णय के दृष्टिगत प्रतिवादी के विरुद्ध पूर्णतः कवर है। [अनुच्छेद 9][894-जी-एच; 895-ए-बी]

प्रवीण चंद्र मोदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1 एससीआर 269 - पर भरोसा किया गया।

2.2 वर्तमान मामले में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध एक मुख्य अपराध है तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध के संबंध में अन्वेषण, जब साजिश के अपराध के साथ संयुक्त रूप से विचार किया जाए, तो मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल इसलिए कि साजिश का अपराध सम्मिलित हो सकता है, मुख्य अपराध, अर्थात् वर्तमान मामले में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत जो अपराध संज्ञेय है, उसके अन्वेषण को मजिस्ट्रेट से अनुमति की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे काफी विलंब होगा तथा अन्वेषण प्रभावित होगा और अन्वेषण पटरी से उतर जाएगा। अतः, उच्च न्यायालय ने धारा 120बी के अपराध को गैर-संज्ञेय बताते हुए जम्मू एवं कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अंतर्गत आवश्यक

पूर्व अनुमति प्राप्त न करने के आधार पर आपराधिक कार्यवाही रद्द करने में त्रुटि की। [अनुच्छेद 10][895-जी-एच; 896-ए-बी]

3. सतर्कता मैनुअल, 2008 का नियम 3.16 इस न्यायालय द्वारा ललिता कुमारी मामले में प्रतिपादित अवलोकनों तथा विधि के अनुरूप कहा जा सकता है। नियम/खंड 3.16 का निकट पठन दर्शाता है कि इसे भी आरोपी तथा/या जिस व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाए गए हैं उसके हित में तथा आरोपी को तुच्छ शिकायतों से संरक्षित करने के लिए कहा जा सकता है। खंड 3.16 के अनुसार केवल प्रारंभिक जांच के संपन्न होने तथा प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की आवश्यकता है। अपराधों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विस्तृत जांच आवश्यक है तथा इसलिए खंड 3.16 में अवलोकन किया गया है कि प्रारंभिक जांच सामान्यतः छह मास की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए। प्रतिवादी की ओर से यह मामला है तथा विवादित निर्णय एवं आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा अवलोकित एवं निर्णयित भी है कि ललिता कुमारी मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार प्रारंभिक जांच करवाने से आरोपों के गुण-दोष पर विस्तृत अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है तथा ऐसी जांच सात दिनों की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए, के संबंध में ध्यान देने योग्य है कि ललिता कुमारी मामले में यह नहीं निर्णय दिया गया कि यदि प्रारंभिक जांच सात दिनों की अवधि में पूर्ण न की गई तो समस्त आपराधिक कार्यवाही शून्य हो जाएगी तथा उन्हें रद्द किया जाना चाहिए। [अनुच्छेद 11, 12][896-सी, जी-एच; 897-ए-बी]

ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार **एआईआर 2014 एससी 187: 2014 (2) एससीसी 1: 14 एससीआर 713;** *पंजाब राज्य बनाम बृज लाल पालता* **1 एससीआर 853;** *सत्या नारायण मुसादी बनाम बिहार राज्य* **(1980) 3 एससीसी 152; मदन** *लाल बनाम पंजाब राज्य* **3 एससीआर 439;** *भंवर सिंह बनाम राजस्थान राज्य* **2 एससीआर 528 - पर भरोसा किया गया।**

4.1 धारा 3.16 के अधीन प्रारंभिक जांच (Preliminary Enquiry) करते समय, जो भी कार्यवाही की जाएगी, वह केवल आरोपों की जांच के रूप में होगी ताकि यह विचार किया जा

सके कि क्या प्रथम दृष्टया कोई मामला बनता है जिसकी एफआईआर दर्ज करने के बाद आगे जांच की आवश्यकता है। एफआईआर दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करते समय, कुछ जांच/अन्वेषण का होना निश्चित है, तथापि, वह केवल एफआईआर दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही होगा। प्रारंभिक जांच के चरण में जो भी जांच की जाती है, उसे किसी भी कल्पना के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अन्वेषण नहीं माना जाएगा, जो केवल एफआईआर दर्ज करने के बाद ही हो सकता है। वैसे भी, केवल इसलिए कि प्रारंभिक जांच करते समय प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों में विस्तृत जांच की गई, जो केवल एफआईआर दर्ज करने के उद्देश्य से प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही कही जा सकती है और केवल इसलिए कि एफआईआर दर्ज करने से पहले प्रारंभिक जांच में कुछ अधिक समय लिया गया, समस्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक जांच के चरण में अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा, जो केवल यह संतुष्ट करने के उद्देश्य से होगी कि शिकायत में लगाए गए आरोपों के संबंध में क्या प्रथम दृष्टया कोई मामला बनता है जिसकी एफआईआर दर्ज करने के बाद आगे जांच की आवश्यकता है या नहीं। अतः, उच्च न्यायालय ने खंड 3.16 को अल्ट्रा वायर्स घोषित करने में सामग्री भूल की है। [अनुच्छेद 13][897-डी-एच]

4.2 अब जहां तक उच्च न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए चौथा आधार/प्रश्न उठाया है, अर्थात् मुख्य षड्यंत्रकारियों - निजी लिमिटेड कंपनियों और/या उनके प्रभारियों के अभाव में प्रतिवादी को विकरियली उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, इस संबंध में यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी के विरुद्ध आरोप उसके व्यक्तिगत क्षमता के संबंध में हैं। निजी लिमिटेड कंपनियों के निदेशकों के अलावा, प्रतिवादी संख्या 1 और अन्य अधिकारियों को अभियुक्त के रूप में सम्मिलित किया गया है। अतः, विकरिय दायित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी कि मुख्य षड्यंत्रकारियों - निजी लिमिटेड कंपनियों और/या उनके प्रभारियों के अभाव में प्रतिवादी संख्या 1 को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, अस्वीकार्य है और स्वीकार नहीं की जा सकती। उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त आधार पर समस्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में भूल की है। [अनुच्छेद 14][898-ए-सी]

एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ **(1990) 4 एससीसी 594: 1 सप्ल. एससीआर 44**; *भारत संघ बनाम ई.जी. नंबूदिरी* **(1991) 3 एससीसी 38: 2 एससीआर 451**; *ओरिक्स*

फिशरीज प्रा. लि. बनाम भारत संघ **(2010) 13 एससीसी 427: 13 एससीआर 234**; *विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी, बंबई बनाम गोडरेज एंड बॉयस* **(1988) 1 एससीसी 50: 1 एससीआर 590**; *इंडियन नेशनल कांग्रेस बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वेलफेयर* **(2002) 5 एससीसी 685: 3 एससीआर 1040**; *नजीर अहमद बनाम द किंग एम्परर* **एआईआर 1936 पीसी 253**; *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंहारा सिंह* **4 एससीआर 485**; *प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* **(2015) 6 एससीसी 287: 4 एससीआर 108 - संदर्भित।**

टेलर बनाम टेलर **(1875) 1 चै.डी. 426, 431 - संदर्भित।**

<u>मामला कानून संदर्भ</u>

[1990] सप्ल. एससीआर 44	**अनुच्छेद 6.7 में संदर्भित**
[1991] एससीआर 451	**अनुच्छेद 6.7 में संदर्भित**
[2010]13 एससीआर 234	**अनुच्छेद 6.7 में संदर्भित**
[1988]1 एससीआर 590	**अनुच्छेद 6.8 में संदर्भित**
[2002]3 एससीआर 1040	**अनुच्छेद 6.8 में संदर्भित**
[1965]1 एससीआर 269	**अनुच्छेद 6.10 में संदर्भित**
[1969]1 एससीआर 853	**अनुच्छेद 11 में निर्भर**
[1980] 3 एससीसी 152	**अनुच्छेद 11 पर निर्भर**
[1967]3 एससीआर 439	**अनुच्छेद 11 पर निर्भर**
[1968]2 एससीआर 528	**अनुच्छेद 11 पर निर्भर**
एआईआर 1936 पीसी 253	**अनुच्छेद 7.4 में संदर्भित**
[1964]4 एससीआर 485	**अनुच्छेद 7.4 में संदर्भित**
[2015]4 एससीआर 108	**अनुच्छेद 7.13 में संदर्भित**

[1990]3 सप्ल. एससीआर 259 अनुच्छेद 8.4 पर निर्भर

[2000]1 एससीआर 579 अनुच्छेद 8.4 पर निर्भर

[2013]14 एससीआर 713 अनुच्छेद 12 पर निर्भर

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1170 सन् 2021।

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय, श्रीनगर के 07.05.2018 के निर्णय एवं आदेश से ओडब्ल्यूपी संख्या 1961 सन् 2015 में।

अपीलीय पक्ष के लिए: आर. वेंकटरमणि, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री तरुणा अर्धेंदुमौली प्रसाद, पार्थ अवस्थी, चितवन सिंघल, अधिवक्ता।

प्रतिवादी पक्ष के लिए: आर. बसंत, वरिष्ठ अधिवक्ता, पी. वी. दिनेश, सलीह पिरजादा, अश्विनी कुमार सिंह, बिनीश के., अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति एम. आर. शाह,** द्वारा सुनाया गया।

1.जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, श्रीनगर द्वारा ओ.डब्ल्यू.पी. संख्या 1961/2015 में दिनांक 07.05.2018 के impugned निर्णय एवं आदेश से असंतुष्ट एवं निराश महसूस करते हुए, जिसमें उच्च न्यायालय ने अपनी असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए एफआईआर संख्या 32/2012 के आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर दिया है तथा सतर्कता मैनुअल, 2008 के नियम 3.16 को प्रारंभिक जांच (पीई) से संबंधित बताते हुए इस न्यायालय के संवैधानिक पीठ के निर्णय ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, एआईआर 2014 एससी 187 = 2014 (2) एससीसी 1 के सीधे टकराव में होने की घोषणा की है, तथा परिणामस्वरूप इसे अल्ट्रा वायर्स घोषित किया है, राज्य ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है।

2.कि एफआईआर संख्या 32/2012, पुलिस स्टेशन, वीओके, प्रतिवादी के विरुद्ध जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 (इसके बाद 'जे एंड के पीसी अधिनियम, 2006' कहा जाएगा) की धारा 5(1)(द) पठित 5(2) तथा रणबीर दंड संहिता (इसके बाद

'आरपीसी' कहा जाएगा) की धारा 120बी के अधीन दर्ज की गई थी, जिसमें inter alia आरोप लगाया गया कि 2010-11 के दौरान, कश्मीर के स्वास्थ्य सेवा निदेशक ने अन्य अभियुक्तों के साथ मिलकर राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के अधीन निम्न गुणवत्ता वाले चिकित्सा किटों की अत्यधिक महंगे दरों पर खरीद करके सरकारी धन की भारी राशि का दुरुपयोग किया तथा विभाग द्वारा दिए गए आपूर्ति आदेशों की शर्तों का उल्लंघन किया। प्रतिवादी के विरुद्ध निम्नानुसार आरोप लगाया गया:

i) वर्तमान प्रतिवादी ने एनआरएचएम योजना के अधीन 4 सीपीएसईज से लिमिटेड टेंडर के माध्यम से विभिन्न दवा किट खरीदे तथा आश्चर्यजनक रूप से सभी 4 सीपीएसईज ने समान दरें उद्धृत कीं। प्रत्येक सीपीएसई से 25% के बराबर आपूर्ति आदेश देने का निर्णय लिया गया।

ii) 4 सीपीएसईज द्वारा उद्धृत दरें पूर्व वर्ष में खरीद की गई दरों की तुलना में बहुत अधिक थीं। वर्तमान प्रतिवादी ने जानबूझकर उन दरों की उपेक्षा की जिन पर विभाग ने निजी कंपनियों से समान प्रकार की दवा किटें दिनांक 28-03-2009 के दर अनुबंध के अनुसार खरीदी थीं, जो स्वास्थ्य एवं चिकित्सा शिक्षा के दर अनुबंध समिति संख्या 1 द्वारा एक वर्ष के लिए अनुमोदित था, जिसमें दवा किटों की दरें 4 सीपीएसईज द्वारा उद्धृत दरों से बहुत कम थीं, तुलना निम्नानुसार है:-

क्र. स.	दवा किट का नाम	क्रय समिति सं. 1 के दर अनुबंध के अनुसार वर्ष 2009-10 हेतु स्वीकृत दरें	वर्ष 2011 में चार सीपीएसई द्वारा उद्धृत दरें	दरों में अंतर

1		रु 3,400/-प्रति किट	रु 6,559/-प्रति किट	रु 3,159/-प्रति किट
2		रु 1,855/-प्रति किट	रु 4,368/-प्रति किट	रु 2,513/-प्रति किट
3		रु 931/- प्रति किट	रु 1,878/-प्रति किट	रु 947/-प्रति किट

यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान प्रतिवादी को वर्ष 2009-10 के लिए अनुमोदित दवा किटों की दरों का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि वह उस समय सहायक निदेशक, परिवार कल्याण एवं प्रजनन बाल स्वास्थ्य देखभाल के पद पर तैनात था तथा खरीद समिति संख्या 1 की उप-समिति का सदस्य नामित था जिसने वर्ष 2009-10 के लिए दरें अनुमोदित की थीं।

iii) फर्मों द्वारा उद्धृत दरों की प्रामाणिकता का पता लगाने के लिए कोई बाजार सर्वेक्षण नहीं किया गया न ही यह सुनिश्चित करने के लिए कोई वार्ता की गई कि वर्ष 2010-11 के दौरान सरकारी खजाने को कोई हानि न हो।

iv) दवाओं एवं किटों की पैकिंग एवं पैकेजिंग पर गुणवत्ता नियंत्रण जांच सत्यापित करने के लिए दवा किटों के कोई नमूने प्राप्त नहीं किए गए।

v) वर्तमान प्रतिवादी ने एनआरएचएम किट मूल निर्माता से नहीं बल्कि आपूर्तिकर्ताओं से अत्यधिक दरों पर खरीदे।

vi) खरीदी गई किट एवं दवाएं आवश्यक मानक की नहीं थीं। इसके अतिरिक्त तीन प्रकार की किटों का अधिकांश दवाएं/वस्तुएं वास्तव में निजी एजेंसियों द्वारा निर्मित की गई थीं न कि स्वयं सीपीएसईज या उनकी सहायक कंपनियों द्वारा, जिसके फलस्वरूप पीपीपी के आवरण में निजी एजेंसियों को अनुचित लाभ हुआ जो कभी इसका उद्देश्य नहीं था।

vii) यह उल्लेखनीय है कि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार तथा रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार, सीपीएसईज के लिए खरीद प्राथमिकता नीति (पीपीपी) केवल 102 दवाओं/औषधियों के संबंध में ही मान्य थी, जबकि उल्लिखित तीन दवा किटों के विभिन्न घटक 102 सूचीबद्ध दवाओं में पीपीपी के अधीन दर्ज नहीं थे।

viii) भारत सरकार के दिशानिर्देशों के अनुसार, दवा किटों का गठन करने वाली दवाओं की दरें राष्ट्रीय औषधि मूल्य नियामक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित दरों के अनुसार 35% तक की छूट के साथ होनी चाहिए थीं। उल्लेखनीय है कि खरीद विभाग ने एनपीपीए की कोई दर सूची या आपूर्तिकर्ता सीपीएसईज से दर विश्लेषण प्राप्त नहीं किया ताकि यह सत्यापित किया जा सके कि उद्धृत दरें वास्तव में एनपीपीए द्वारा प्रमाणित हैं तथा क्या ऐसी दरों पर 35% तक की छूट दी गई है।

ix) सभी 4 सीपीएसईज ने आपूर्ति आदेशों के खंड संख्या 02 में निर्धारित शर्त पर आपत्ति दर्ज की थी जिसमें कहा गया था कि सभी दवाएं एवं वस्तुएं स्वयं फर्म द्वारा निर्मित होनी चाहिए तथा किसी अन्य इकाई द्वारा निर्मित कोई दवा/वस्तु स्वीकार नहीं की जाएगी। वर्तमान प्रतिवादी ने सुधार पत्र जारी किया जिससे पूर्व आदेश में संशोधन कर दिया गया कि वस्तुएं अन्य स्रोतों से भी खरीदी जा सकती हैं तथा इस प्रकार पहले ही खरीद ली गई निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुओं को नई समिति द्वारा स्वीकृत कर दिया गया, जिससे राज्य के खजाने को 1,04,99,429/- रुपये का नुकसान हुआ।

3. प्रतिवादी-अभियुक्त ने उपर्युक्त आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने हेतु ओ.डब्ल्यू.पी. संख्या 1961/2015 के माध्यम से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, अपनी असाधारण क्षेत्राधिकार को आमंत्रित करते हुए निम्नलिखित प्रश्न उठाए:

क) क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 एक अनिवार्य प्रावधान है तथा इसके पालन न करने से जांच दोषपूर्ण हो जाती है?

ख) क्या संज्ञेय अपराधों के साथ असंज्ञेय अपराधों की जांच के लिए जम्मू एवं कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अधीन मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य है?

ग) क्या प्रारंभिक सत्यापन के बहाने एफआईआर दर्ज करने से पूर्व जांच एजेंसी शिकायत की सत्यता की जांच कर सकती है?

ख) क्या आपराधिक षड्यंत्र (Criminal Conspiracy) जैसा अपराध किसी विधिक व्यक्ति (juridical person) जैसे कंपनी द्वारा किया जा सकता है?

इस न्यायालय के राज्य हरियाणा बनाम भजन लाल, 1992 Supp. (1) SCC 335 के निर्णय तथा ललिता कुमारी (supरा) मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भारी निर्भरता की गई।

4.विवादित निर्णय एवं आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने उपरोक्त अपराधों के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध आरंभ की गई समस्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द करते हुए निम्नलिखित धारण किया है कि:

(1) जे एंड के पीसी एक्ट, 2006 की धारा 3 के अनिवार्य प्रावधान का अतिक्रमण हुआ है, क्योंकि धारा 3 के द्वितीय परंतुक के अनुसार गैर-नामित अधिकारी को प्राधिकार प्रदान करते समय प्राधिकृत अधिकारी द्वारा कोई विशेष एवं पृथक तर्कबद्ध आदेश पारित नहीं किया गया;

(2) धारा 120बी के अपराध के लिए जे एंड के सीआरपीसी की धारा 155 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई;

(3) प्रारंभिक सत्यापन में विलंब हुआ तथा प्रारंभिक सत्यापन करते हुए प्राधिकारी ने जांच के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया जो कि ललिता कुमारी (उप्र cit.) मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिबंधित है; तथा

(4) प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित आरोपों को, यदि उसके पूर्ण रूप से सत्य मान लिया जाए, तो भी वे विधिक रूप से टिकाऊ नहीं हैं।

4.1 उपरोक्त धारणा करते हुए, उच्च न्यायालय ने प्रारंभिक सत्यापन संख्या 34/2011, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 32/2012, पुलिस स्टेशन विजिलेंस ऑर्गेनाइजेशन कश्मीर तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट की परिणामी जांच को रद्द कर दिया। उच्च न्यायालय ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, वीओके, श्रीनगर द्वारा 16.11.2012 के दिन पारित सौंपने के आदेश को भी रद्द कर दिया, जिसमें जांच अधिकारी को मामले/अपराधों की जांच करने का प्राधिकार प्रदान किया गया था। उच्च न्यायालय ने विजिलेंस मैनुअल, 2008 के नियम 3.16 को, जो प्रारंभिक जांच (पीई) से संबंधित है, अल्ट्रा वायर्स घोषित करते हुए यह आधार लिया कि यह ललिता कुमारी (उप्र cit.) मामले में इस न्यायालय के निर्णय के साथ प्रत्यक्ष रूप से टकराव में है।

5.विवादित निर्णय एवं आदेश से असंतुष्ट एवं अप्रसन्न महसूस करते हुए, जम्मू एंड कश्मीर राज्य ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है।

अपीलकर्ताओं की ओर से श्री आर. वेंकटरामणी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा प्रतिवादी की ओर से श्री आर. बसंत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता उपस्थित हुए हैं।

6.1 राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. वेंकटरामणी ने तीव्रता से प्रस्तुत किया कि मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट सहित समस्त आपराधिक कार्यवाही तथा 16.11.2012 के सौंपने के आदेश को रद्द करने में गंभीर भूल की है।

6.2 यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने चार प्रश्न तैयार किए, जो ऊपर पुनः

उद्धृत किए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया कि प्रश्न संख्या 1 के संबंध में, अर्थात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 अनिवार्य प्रावधान है या नहीं तथा उसके अतिक्रमण से जांच शून्य हो जाती है या नहीं, उच्च न्यायालय द्वारा की गई धारणाएं जे एंड के पीसी एक्ट, 2006

एवं जे एंड के सीआरपीसी के प्रासंगिक प्रावधानों की उपेक्षा में हैं।

6.3 यह प्रस्तुत किया गया कि *भजन लाल* (उप्र cit.) मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता पूर्णतः भ्रामक है। यह प्रस्तुत किया गया कि *भजन लाल* मामले में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (जिसके पश्चात् '1947 अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा

3 एवं 5क के प्रावधानों पर विचार किया गया, जो 1988 में अधिनियम के संशोधन से पूर्व के थे। यह प्रस्तुत किया गया कि जिस जे एंड के पीसी एक्ट, 2006 की धारा 3 के अंतर्गत विवादित अभियोजन आरंभ किया गया, वह 1947 अधिनियम की धारा 3 या धारा 5क के अनुरूप नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया कि जे एंड के पीसी एक्ट, 2006 में 1947 अधिनियम की

धारा 5क के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं है।

6.4 यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने यह तथ्य उचित रूप से आंकलन नहीं किया कि *भजन लाल* मामले में 1947 अधिनियम की धारा 5क के अंतर्गत प्राधिकरण प्रदान करने के लिए कारण बताने की आवश्यकता पर अपनाई गई तर्कधारा धारा 5क के विशेष प्रावधानों के संदर्भ में उत्पन्न हुई थी। यह प्रस्तुत किया गया कि न्यायालय ने गैर-नामित अधिकारी को जांच करने की अनुमति प्रदान करने के संदर्भ में मजिस्ट्रेट द्वारा कारण बताने की आवश्यकता तथा वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा अधीनस्थ पुलिस अधिकारी को जांच के

कार्य का प्रशासनिक प्रत्यायोजन को तुलनीय मान लिया है। यह प्रस्तुत किया गया कि जे एंड के पीसी एक्ट, 2006 की धारा 3, जिसमें धारा 3 के द्वितीय परंतुक में अपना विशेष प्रत्यायोजन

योजना अधिनियमित की गई है, के दृष्टिकोण से 1947 अधिनियम की धारा 5क के संदर्भ में *भजन लाल* मामले पर निर्भरता पूर्णतः भ्रामक है।

6.5 यह आगे प्रस्तुत किया गया कि इस प्रकार इस न्यायालय का भजन लाल (उप्र cit.) मामले का निर्णय इस न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम राम सिंह (2000) 5 SCC

88 मामले में उसके पश्चात् स्पष्ट किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया कि *राम सिंह* (उप्र cit.) मामले में पुलिस अधीक्षक का आदेश, जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत अपराध की जांच करने के लिए निरीक्षक को प्राधिकार प्रदान किया गया तथा जिसमें आरोपी का नाम, प्रथम सूचना रिपोर्ट का संख्या, अपराध का स्वरूप तथा पुलिस अधीक्षक की शक्ति का उल्लेख किया गया जो उसे अधीनस्थ अधिकारी को जांच करने का प्राधिकार प्रदान करने की अनुमति देती है, उसे वैध प्राधिकरण माना गया है। यह प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने *भजन लाल* (उप्र cit.) मामले में इस न्यायालय के निर्णय

को अलग किया है। यह प्रस्तुत किया गया कि इसलिए *राम सिंह* (उप्र cit.) मामले में इस न्यायालय का पश्चात् निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूर्णतः लागू होगा।

6.6 यह प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान मामले में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, विजिलेंस ऑर्गेनाइजेशन द्वारा प्रदत्त प्राधिकार स्पष्ट रूप से धारा 3 के द्वितीय परंतुक के दायरे में आता

है तथा उसके अंतर्गत सम्मिलित है। यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने धारा 3 के

द्वितीय परंतुक की विशिष्ट विशेषताओं पर ध्यान नहीं दिया है। यह प्रस्तुत किया गया कि द्वितीय परंतुक गैर-नामित अधिकारी को जांच करने का प्राधिकार प्रदान करने के लिए कारण बताने की आवश्यकता की मांग नहीं करता।

6.7 यह आगे प्रस्तुत किया गया कि कार्यों का निर्वहन, जो न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति के हों, के विपरीत, प्रशासनिक प्राधिकारी को अपने सभी कार्यों के निर्वहन में कारण बताने के लिए बाध्य नहीं ठहराया जा सकता। यह प्रस्तुत किया गया कि धारा 3 का द्वितीय परंतुक प्रशासनिक सुविधा एवं शीघ्र जांच के लिए अधिनियमित किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया कि ऐसी कार्यों की प्रकृति को देखते हुए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विजिलेंस संगठन के अधिकारी को जांच करने का प्राधिकार प्रदान करने के लिए कारण बताने की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त के समर्थन में इस न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता की गई है: *एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 SCC 594*; *भारत संघ बनाम ई.जी. नंबूदिरी,*

(1991) 3 SCC 38 तथा *ओरिक्स फिशरीज प्रा. लि. बनाम भारत संघ, (2010) 13 SCC 427*।

6.8 यह प्रस्तुत किया गया कि इसलिए धारा 3 के द्वितीय परंतुक में उल्लिखित प्राधिकरण के लिए कारण बताने की आवश्यकता भ्रामक है। प्रथमतः, परंतुक स्वयं जांच की शक्ति का प्राधिकार प्रदान करने के लिए कारण बताने की कल्पना नहीं करता तथा द्वितीयतः, प्राधिकार प्रदान करने की शक्ति पूर्णतः प्रशासनिक होने के कारण जो शीघ्रता एवं लोक नीति पर आधारित है, कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया कि गैर-नामित अधिकारी को जांच की शक्ति का प्रत्यायोजन करने का मामला किसी पक्षकार के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता। इस मामले में कोई विवाद नहीं है। द्वितीय परंतुक के

अंतर्गत की गई कार्रवाइयां किसी अपील या पुनरीक्षण के अधीन नहीं हैं। यह प्रस्तुत किया गया कि केवल वहां जहां पक्षकारों के अधिकार प्रभावित होते हैं; प्रश्नगत कार्य की प्रकृति अर्ध-न्यायिक है, या यह अपीलीय या पुनरीक्षणीय शक्ति के पदानुक्रम में है, वहां कारण बताने की आवश्यकता हो सकती है तथा अन्यथा नहीं। इस न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता की गई है: *विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी, बंबई बनाम गोडरेज एंड बॉयस, (1988) 1 SCC 50* तथा *भारतीय*

राष्ट्रीय कांग्रेस बनाम सोशल वेलफेयर इंस्टीट्यूट, (2002) 5 SCC 685।

6.9 अब प्रश्न संख्या 2 के संबंध में, अर्थात् जे एंड के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति संज्ञेय अपराधों के साथ असंज्ञेय अपराधों की जांच के लिए अनिवार्य है या नहीं, यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने जे एंड के सीआरपीसी की धारा 155 एवं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 155 की तुलना की है। यह प्रस्तुत किया

गया कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 155 की उपधारा (4) का विशेष उल्लेख किया गया

है। यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय ने धारणा की है कि जे एंड के सीआरपीसी की धारा 155 में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 155 की उपधारा (4) के समकक्ष कोई प्रावधान

नहीं है, तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जे एंड के सीआरपीसी की धारा 155 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा वैध स्वीकृति के अभाव में जांच अवैध है।

6.10. यह प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त मुद्दा इस न्यायालय के *प्रवीण चंद्र मोदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1965 (1) एससीआर 269 (अनुच्छेद 6)* के निर्णय के दृष्टिकोण से राज्य

के पक्ष में पूर्णतः कवर है।

6.11 राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने धारा 155(4) के पीछे के विधायी इतिहास तथा विधि आयोग की 37वीं रिपोर्ट की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जो संज्ञेय अपराध के साथ असंज्ञेय अपराध की जांच तथा विशेष रूप से मजिस्ट्रेट से प्राधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता से संबंधित है। यह प्रस्तुत किया गया कि विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के अनुसरण में धारा 155 सीआरपीसी में उपधारा (4) सम्मिलित की गई। यह प्रस्तुत किया गया कि जैसा कि 37वीं रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, विधि इस न्यायालय द्वारा *प्रवीण चंद्र मोदी* (उप्र cit.) मामले में पहले ही प्रतिपादित हो चुकी थी तथा केवल *प्रवीण चंद्र मोदी* (उप्र cit.) के आधार पर प्रावधान अधिनियमित करने की आवश्यकता थी। यह प्रस्तुत किया गया कि इस न्यायालय का *प्रवीण चंद्र मोदी* (उप्र cit.) मामले का निर्णय इस न्यायालय द्वारा उसके पश्चात् *पंजाब राज्य बनाम बृज लाल पालता (1980) 3 SCC 152; मदन लाल बनाम*

पंजाब राज्य, (1967) 3 SCR 439; तथा *भंवर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (1968) 2 SCR 528*

मामलों में विचार किया गया है।

6.12 यह प्रस्तुत किया गया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के संबंध में जांच, जब षड्यंत्र के अपराध के साथ संयुक्त हो, तो क्या हमेशा मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति के अधीन होनी चाहिए, इस मुद्दे को इस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि केवल इस कारण कि षड्यंत्र का अपराध सम्मिलित हो सकता है, संज्ञेय मूल अपराधों की जांच मजिस्ट्रेट की स्वीकृति का इंतजार करे, क्योंकि इससे प्रारंभिक जांच चरणों में काफी विलंब एवं

अनिश्चितता उत्पन्न होगी। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि धारा 120बी के अंतर्गत षड्यंत्र का अपराध भी मूल अपराध के रूप में माना जाता है।

6.13 यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण विधि के अनुसार सही है, तो यह हर विशेष विधान के अंतर्गत संज्ञेय अपराधों वाली जाँच के मामले में लागू होगा, जहाँ षड्यंत्र अपराध के धारा 120B से संबंध सभी ऐसी जाँचों को

पटरी से उतार देगा और विलंब का कारण बनेगा।

6.14 अब प्रश्न संख्या 3 के संबंध में, अर्थात् क्या प्रारंभिक सत्यापन के बहाने जाँच एजेंसी प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) दर्ज करने से पूर्व शिकायत की सत्यता का सत्यापन कर सकती है, तथा उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज की गई टिप्पणियाँ और निष्कर्ष कि जम्मू-कश्मीर विजिलेंस मैनुअल, 2008 की नियम 3.16 इस न्यायालय के ललिता कुमारी (उद्धृत) मामले के

निर्णय के साथ प्रत्यक्ष रूप से टकराव में है, के संबंध में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण पूर्णतः भ्रांत है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि *ललिता कुमारी* (उद्धृत) विशेष विधानों के मामलों में अपनाई जाने वाली विशेष प्रक्रिया का उल्लेख करता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 4 एवं 5 का भी उच्च न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है। निरंतर बढ़ते विशेष विधानों के अंतर्गत जाँच की जाने वाली वैधानिक अपराधों के व्यापक स्पेक्ट्रम को ध्यान में रखते हुए, प्रारंभिक जाँच और FIR पंजीकरण में किसी भी अनियमितता के आधार पर जाँच एवं अभियोजन को बाधित करना अयुक्तिसंगत होगा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि विजिलेंस मैनुअल, 2008 की नियम 3.16 दंड प्रक्रिया

संहिता, 1973 की धारा 4 एवं 5 के प्रावधानों के साथ पूर्णतः सुसंगत एक सुविचारित योजना है।

6.15 यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि इस प्रकार के अपराधों की जाँच की प्रकृति में ही, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जिसमें न केवल दस्तावेजी साक्ष्य संग्रहण बल्कि जाँच के

उद्देश्य से अन्य प्रारंभिक बयान प्राप्त करना भी शामिल हो सकता है, ताकि किसी अपराध के अभाव को नकारा जा सके, इसके लिए आवश्यक रूप से समय लगेगा। यह भी अपरिहार्य हो सकता है कि इस प्रकार संग्रहीत सामग्री जाँच का हिस्सा बन जाए, जो जाँच के दौरान पर्याप्त मार्गदर्शन प्रदान करे। यह प्रस्तुत किया जाता है कि *ललिता कुमारी* (उद्धृत) प्रारंभिक जाँच के संचालन में अनियमितता के मामलों में आरोपी को किसी अवैधता की घोषणा की मांग करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता। यह प्रस्तुत किया जाता है कि कोई आरोपी, जो प्रथम दृष्टया अपराध के कमीशन का दोषी हो, अन्यथा अभियोजन और दंड से मुक्त नहीं हो सकता यदि वे अन्यथा देय हों। यह प्रस्तुत किया जाता है कि अंततः लागू होने वाली कसौटी यह होगी कि क्या न्याय की विफलता या गड़बड़ी हुई है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करने के बजाय, उच्च न्यायालय ने अनुचित हस्तक्षेप किया है और अभियोजन को रद्द करने में त्रुटि की है।

6.16 अब प्रश्न संख्या 4 के अंतर्गत निकाले गए निष्कर्ष मामले के रिकॉर्ड के विपरीत हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि निजी लिमिटेड कंपनी के निदेशकों के अलावा, प्रतिवादी संख्या 1 एवं अन्य अधिकारियों को आरोपी के रूप में सम्मिलित किया गया है। यह आवश्यक नहीं था कि राज्य NRHM तंत्र के किसी व्यक्ति पर संदेह किया जाए और उन्हें सह-षड्यंत्रकारियों के रूप में माना जाए। यह प्रस्तुत किया जाता है कि जाँच के अनुसार, प्रतिवादी

संख्या 1 एवं अन्य आरोपी अधिकारियों का विवादित सामग्री की खरीद हेतु निविदा प्रक्रिया के दौरान आचरण ही संदिग्ध घटनाएँ बनीं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए उच्च न्यायालय ने अभियोजन को रद्द करते हुए प्रश्न संख्या 4 को राज्य के विरुद्ध धारण करके गंभीर त्रुटि की है।

6.17 उपरोक्त प्रस्तुतियाँ करते हुए तथा उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, वर्तमान अपील को स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है।

7. वर्तमान अपील का कड़ाई से विरोध प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बसंत द्वारा किया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में तथा जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 3 का सही व्याख्या करते हुए तथा जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति के अभाव में, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के विरुद्ध आरंभ की गई आपराधिक कार्यवाही को सही रूप से रद्द की है।

7.1 यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय ने सही रूप से अवलोकन किया है कि प्रारंभिक जाँच (PE) के बहाने जाँच एजेंसी प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) दर्ज करने से पूर्व शिकायत की सत्यता का विस्तृत सत्यापन नहीं कर सकती। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रारंभिक जाँच से संबंधित विजिलेंस मैनुअल, 2008 की नियम 3.16

को अल्पक्षम घोषित करना सही किया है।

7.2 यह प्रस्तुत किया जाता है कि जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के

अंतर्गत जाँच अधिनियम की धारा 3 द्वारा नियंत्रित है तथा इस प्रकार इसमें गैर-हस्तक्षेप खंड

है जो दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रक्रिया को बाहर करता है। यह

प्रस्तुत किया जाता है कि संशोधित धारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत सभी अपराधों को संज्ञेय बनाती है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 3 में दो प्रावधान हैं, जो वास्तव में जाँच के तरीके पर प्रतिबंध लगाते हैं। प्रथम प्रावधान के अनुसार, अंतः, अधिनियम के

अंतर्गत किसी अपराध की जाँच डीएसपी के पद से नीचे के कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा। द्वितीय प्रावधान प्रथम प्रावधान में विनिर्दिष्ट शर्त के लिए अपवाद उत्पन्न करता है तथा द्वितीय प्रावधान के अनुसार, पुलिस उप-निरीक्षक के पद से विजिलेंस संगठन का कोई अधिकारी इस प्रकार के अपराधों की जाँच कर सकता है किंतु पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे न होने वाले विजिलेंस संगठन के अधिकारी द्वारा लिखित रूप से विशेष रूप से अधिकृत किए जाने पर। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट की जाँच का इंस्पेक्टर निसार हुसैन को सौंपा गया था। यह अधिकारी धारा 3 के उद्देश्य के लिए नामित अधिकारी न होने के कारण, इसलिए द्वितीय प्रावधान के अनुसार सहायक पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे न होने वाले विजिलेंस संगठन के अधिकारी द्वारा अलग एवं तर्कसंगत आदेश द्वारा विशेष रूप से अधिकृत होना चाहिए। यह प्रस्तुत किया जाता है कि विजिलेंस संगठन के इस प्रकार के अधिकारी को प्रदान की गई सत्ता वैधानिक होने के कारण न तो मनमानी हो सकती है और न ही अयुक्तिसंगत। इसलिए, अधिकृत करने वाला अधिकारी वर्तमान मामले में इंस्पेक्टर जैसे गैर-नामित जाँच अधिकारी को सत्ता प्रदान करते समय इसे विशेष एवं अलग तर्कसंगत आदेश द्वारा प्रदान करना होगा। धारा 3 एक अनिवार्य प्रावधान है तथा इसके अंतर्गत निर्मित वैधानिक दायित्वों का

पालन किया जाना चाहिए तथा इससे किसी भी विचलन से सम्पूर्ण जाँच शून्य हो जाएगी।

7.3 यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में इंस्पेक्टर को जाँच की विशेष सत्ता प्रदान करने हेतु कोई तर्कसंगत अधिकृत आदेश नहीं है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि ऐसा आदेश यांत्रिक नहीं हो सकता तथा इस प्रकार असाधारण जाँच पथ पर विचलन के कारणों को प्रकट करना होगा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि आदेश से कारणों का अभाव, यदि कोई हो, तो आदेश को भी शून्य बना देगा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए परिणामस्वरूप जाँच भी शून्य हो जाती है तथा इसलिए वर्तमान मामले में जाँच अधिकृत न होने के कारण उच्च न्यायालय द्वारा इसे सही रूप से रद्द किया गया है। उपरोक्त के समर्थन में इस न्यायालय के *भजन लाल* (उद्धृत) मामले के निर्णय (अनुच्छेद 102 तथा 114 से 129) पर भारी

निर्भरता की जाती है।

7.4 यह आगे प्रस्तुत किया जाता है, टेलर बनाम टेलर, (1875) 1 चै.डी. 426, 431 पर भरोसा करते हुए, जहाँ विधि निर्दिष्ट करती है कि कोई निश्चित कार्य किसी निश्चित तरीके से किया जाना चाहिए, तो ऐसा कार्य निर्दिष्ट तरीके से ही किया जाना चाहिए न कि किसी अन्य तरीके से। भारतीय न्यायालयों के निर्णयों पर भी निर्भरता की जाती है, (1) *नाजिर अहमद बनाम द किंग एम्परर*, एआईआर 1936 पीसी 253; तथा (2) *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंहारा सिंह*, (1964) 4 एससीआर 485।

7.5 यह प्रस्तुत किया जाता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत जाँच किए जाने वाले अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए धारा 3 को समग्र रूप से विचार किया जाना चाहिए। यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 3 से जिस गैर-हस्तक्षेप खंड की शुरुआत होती है, पदानुक्रम में निर्धारित वरिष्ठ अधिकारी जो अकेले भ्रष्टाचार

निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराधों की जाँच कर सकता है, तथा धारा 3 एवं उसके प्रावधानों की भाषा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि विधायिका ने सचेत रूप से यह नोट किया प्रतीत होता है कि उच्च पदस्थ व्यक्तियों, जैसे वर्तमान प्रतिवादी जो राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक थे, के विरुद्ध आरोप लगाए जा सकते हैं तथा इसलिए केवल पुलिस उप-निरीक्षक ही जाँच कर सकता है जब तक कि मजिस्ट्रेट या सक्षम पुलिस अधिकारियों द्वारा विशेष रूप से अधिकृत न किया जाए।

7.6 यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि यह सत्य है तथा विवादित नहीं किया जा सकता कि पुलिस महानिरीक्षक वरिष्ठ एक पुलिस इंस्पेक्टर को धारा 3 के अंतर्गत अधिकृत कर सकता है, किंतु ऐसी अधिकृतिकरण वैध, विधिसम्मत, उचित एवं तर्कसंगत होनी चाहिए। यह

प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में अधिकृतिकरण प्रदान करते समय किसी कारण का अभाव होने से कोई उचित अधिकृतिकरण नहीं हुआ है।

7.7 यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 3 का द्वितीय प्रावधान "लिखित रूप से विशेष अधिकृतिकरण" पर जोर देता है तथा इसलिए ऐसी अधिकृतिकरण कारण बतानी चाहिए तथा केवल सामान्य एवं अस्पष्ट अधिकृतिकरण बिना कारण बताए धारा 3 के द्वितीय प्रावधान के निर्देश का उचित पालन नहीं होगा।

7.8 प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बसंत द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि, इस प्रकार, उपरोक्त मुद्दा/प्रश्न इस न्यायालय के भजन लाल (उद्धृत) मामले के निर्णय द्वारा पूर्णतः आवृत है, जिसमें इस न्यायालय ने 1947 अधिनियम की

धारा 5A के द्वितीय प्रावधान की व्याख्या की है।

7.9 अब विजिलेंस मैनुअल, 2008 की नियम 3.16 को, जो प्रारंभिक जाँच (PE) से संबंधित है, अल्पक्षम घोषित करने के संबंध में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) दर्ज करने से पूर्व जाँच एजेंसी ने प्रारंभिक सत्यापन (PE) दर्ज किया था, जिसमें जाँच एजेंसी ने FIR में निहित आरोपों की पदार्थगत जाँच की तथा (1) NRHM

के विभिन्न संचारों की; (2) श्रीनगर तथा जम्मू के स्वास्थ्य सेवाएँ निदेशालय के संचारों की; (3)

भारत सरकार, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों की; (4) वर्ष 2009-

2010 के दौरान जिन दरों पर दवा किट खरीदी गईं, उनकी; (5) कश्मीर स्वास्थ्य सेवाएँ निदेशक

द्वारा जारी सुधारादेश की; तथा (6) आपूर्ति कथित रूप से इंदौर की निजी एजेंसियों द्वारा तथा

न कि केंद्रीय लोक उपक्रमों (CPSEs) द्वारा की गई थी, इनकी जाँच की।

7.10 यह प्रस्तुत किया जाता है कि FIR के पैरा 8 में ही कहा गया है कि गहन सत्यापन के आधार पर प्रतिवादी के विरुद्ध आरोप प्रथम दृष्टया सिद्ध हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रारंभिक सत्यापन का दायरा शिकायत में निहित आरोपों की सत्यता की जाँच करना नहीं है, बल्कि केवल यह देखना है कि क्या कोई संज्ञेय अपराध बनता है या नहीं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को इस हद तक विस्तारित नहीं किया जा सकता जो जाँच एजेंसी को दस्तावेजों की जाँच करते हुए तथा मत बनाते हुए शिकायत का गहन विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान करे।

7.11 यह प्रस्तुत किया जाता है कि सम्पूर्ण दंड प्रक्रिया संहिता (Cr.P.C.) में कोई प्रावधान नहीं है जो जाँच एजेंसी को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पूर्व किसी अपराध की जाँच करने की सत्ता प्रदान करता हो। जाँच की शुरुआत FIR के पंजीकरण से होती है न कि

अन्यथा प्रारंभिक सत्यापन के अंतर्गत। यह प्रस्तुत किया जाता है कि *ललिता कुमारी* (उद्धृत) मामले में इस न्यायालय ने निर्णय दिया है कि प्रारंभिक सत्यापन का उपयोग शिकायत की सत्यता का सत्यापन करने के लिए नहीं किया जा सकता तथा प्रारंभिक सत्यापन 7 दिनों से अधिक नहीं हो सकता। यह 7 दिनों की अवधि किसी भी स्थिति में भावी प्रभाव लेगी क्योंकि यह विधि के प्रावधान की व्याख्या नहीं करती बल्कि विधि प्रतिपादित करती है। इसलिए, प्रारंभिक सत्यापन के बहाने आरंभ की गई अवैध जाँच के दौरान एकत्रित सूचना के आधार पर FIR दर्ज करना रद्द किया जाना चाहिए। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए विवादित FIR अवैधता का परिणाम होने के कारण रद्द करने योग्य है तथा उच्च न्यायालय द्वारा इसे सही रूप से रद्द किया गया है।

7.12 यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में जाँच एजेंसी ने FIR के विवरण से स्पष्ट रूप से एक वर्ष से अधिक समय तक सूचना की सत्यता का विस्तार से सत्यापन किया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि शिकायत या सूचना की सत्यता का सत्यापन

केवल जाँच के दौरान ही किया जा सकता है, अर्थात् FIR दर्ज करने के पश्चात्। यह प्रस्तुत किया जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अंतर्गत निहित प्रक्रिया अनिवार्य है तथा

जाँच एजेंसी को संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली सूचना प्राप्त होने पर FIR दर्ज करने का

दायित्व है। आपराधिक विधि के इस सामान्य सिद्धांत का अपवाद इस न्यायालय द्वारा ललिता कुमारी (उद्धृत) मामले में मान्यता प्राप्त है, जिसमें FIR दर्ज करने से पूर्व भ्रष्टाचार, वैवाहिक विवाद, आर्थिक अपराध आदि से संबंधित मामलों के संबंध में प्रारंभिक सत्यापन की अनुमति है। तथापि, प्रारंभिक सत्यापन का दायरा इस हद तक विस्तारित नहीं किया जा सकता जहाँ शिकायत या सूचना की सत्यता का सत्यापन हो सके। यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 154 में निहित प्रक्रियात्मक सुरक्षा अनिवार्य है तथा इसका उल्लंघन केवल अनियमितता नहीं बल्कि अवैधता है जो उसके पश्चात् FIR के पंजीकरण को अवैध बना देती है।

7.13 यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 6 SCC 287 के मामले में, धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दाखिल आवेदन पर प्रथम

सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। माननीय मजिस्ट्रेट ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया था। हालांकि, इस माननीय न्यायालय ने धारा 154 की आवश्यकताओं को अनिवार्य ठहराया है और ऐसी आवश्यकताओं के अभाव में धारा 156(3) के तहत आवेदन दाखिल नहीं किया जा सकता। यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 154 का पालन न करने से धारा 156(3)

के तहत आवेदन तथा माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अवैध हो गया। यह प्रस्तुत किया

जाता है कि धारा 156(3) के तहत माननीय मजिस्ट्रेट के आदेश पर दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट को भी धारा 154 का पालन न करने के कारण रद्द कर दिया गया। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए धारा 154 के तहत अनिवार्य प्रक्रिया का पालन करना केवल एक मामूली अनियमितता नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह एक अवैधता है जो सभी बाद की कार्रवाइयों को

अवैध बना देती है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए बिना, प्रारंभिक सत्यापन के बहाने तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के तहत अनुसरण की जाने वाली अनिवार्य प्रक्रिया को दरकिनार करते हुए, जांच की गई है।

7.14 उपरोक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए तथा उपर्युक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, वर्तमान अपील खारिज करने की प्रार्थना की जाती है।

8. हमने संबंधित पक्षकारों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है।

सर्वप्रथम यह नोट किया जाना आवश्यक है कि विवादित निर्णय एवं आदेश द्वारा तथा अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के विरुद्ध धारा 5(1)(द) संयुक्त धारा 5(2) जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 तथा दंड संहिता की धारा 120बी के अंतर्गत दंडनीय अपराधों हेतु समस्त आपराधिक कार्यवाही तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द कर दिया है। उच्च न्यायालय ने सतर्कता मैनुअल, 2008 के नियम 3.16 को, जो प्रारंभिक जांच (पीई) से संबंधित है, अल्ट्रा वायर्स घोषित भी किया है। आपराधिक कार्यवाही रद्द करते हुए, उच्च न्यायालय ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, वीओके, श्रीनगर द्वारा दिनांक 16.11.2012 के सौंपने के आदेश को भी रद्द कर दिया है, जिसमें धारा 3 के द्वितीय परिशिष्ट के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इंस्पेक्टर को अपराधों की जांच करने का प्राधिकार दिया गया था। उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्नों को तैयार किया:

क) क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 एक अनिवार्य प्रावधान है तथा इसका पालन न करने से जांच दोषपूर्ण हो जाती है?

ख) क्या जम्मू एवं कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के तहत मजिस्ट्रेट की पूर्व स्वीकृति संज्ञेय अपराधों के साथ असंज्ञेय अपराधों की जांच के लिए अनिवार्य है?

ग) क्या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पूर्व शिकायत की सत्यता का सत्यापन करने के बहाने प्रारंभिक सत्यापन के नाम पर जांच एजेंसी शिकायत की सत्यता का सत्यापन कर सकती है?

घ) क्या आपराधिक षड्यंत्र जैसे अपराध को एक कंपनी जैसे विधिक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है?

8.1 इस न्यायालय के भजन लाल (उक्त) मामले के निर्णय पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया तथा कहा कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, वीओके, श्रीनगर द्वारा इंस्पेक्टर निसार हुसैन को जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006

की धारा 5(1)(द) संयुक्त धारा 5(2) के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करने

का प्राधिकार, जो धारा 3 के द्वितीय परिशिष्ट के तहत शक्तियों का प्रयोग था, शून्य तथा अवैध है क्योंकि कोई कारण बताए/दिए नहीं गए हैं तथा यह एक अकालीय प्राधिकार है। यह नोट किया जाना आवश्यक है कि भजन लाल (उक्त) मामले में इस न्यायालय को 1947 अधिनियम की धारा 5ए पर विचार करने का अवसर मिला था तथा वर्तमान मामले में जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 3 पर विचार किया जाना है। भजन लाल (उक्त) मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आई धारा 5ए निम्नलिखित है:

5-ए. इस अधिनियम के अंतर्गत मामलों की जांच।– (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) में संनीहित किसी भी बात के होते हुए भी,–

(क) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना के मामले में, पुलिस निरीक्षक;

(ख) कलकत्ता तथा मद्रास की प्रेसीडेंसी शहरों में, पुलिस सहायक आयुक्त; के पद से निम्न वरीयता वाले कोई पुलिस अधिकारी–

(ग) बंबई की प्रेसीडेंसी शहर में, पुलिस अधीक्षक; तथा

(घ) अन्यत्र, पुलिस उपाधीक्षक,

धारा 161, धारा 165 या दंड संहिता, 1860 की धारा 165-ए या इस अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत दंडनीय किसी अपराध की जांच प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, जैसा भी मामला हो, या बिना वारंट के इसके लिए कोई गिरफ्तारी नहीं करेगा:

परंतु यदि पुलिस निरीक्षक के पद से निम्न वरीयता वाले न होने वाले पुलिस अधिकारी को राज्य सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस हेतु प्राधिकृत किया गया हो, तो वह भी प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, जैसा भी मामला हो, या बिना वारंट के इसके लिए गिरफ्तारी कर सकता है:

परंतु यह और कि धारा 5 की उपधारा (1) के खंड (स) में वर्णित अपराध की जांच पुलिस अधीक्षक के पद से निम्न वरीयता वाले न होने वाले पुलिस अधिकारी के आदेश के बिना नहीं की जाएगी।"

8.2 इस न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आई अधिनियम की धारा 5ए के अंतर्गत अपराधों की जांच के लिए जांच अधिकारी को प्राधिकृत करने वाली प्राधिकृति निम्नलिखित है:

"हरियाणा सरकार,

गृह विभाग,

आदेश

संख्या 4816-3H-75/22965 जुलाई 26, 1975

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5-ए की उपधारा (1) के प्रथम परिशिष्ट द्वारा प्रदत्त, हरियाणा के राज्यपाल hereby हरियाणा के पुलिस महानिरीक्षक के

प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन सभी पुलिस निरीक्षकों को उक्त अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत अपराधों की जांच करने की hereby प्राधिकृत करते हैं।

एस.डी. भंडारी

हरियाणा सरकार के गृह विभाग के सचिव"

8.3 जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 3, जो हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, निम्नलिखित है:

"3. अपराध संज्ञेय तथा गैर-जमानती होंगे–

दंड प्रक्रिया संहिता में विपरीत किसी भी बात के होते हुए भी इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय सभी अपराध संज्ञेय तथा गैर-जमानती होंगे:

परंतु पुलिस उपाधीक्षक के पद से निम्न वरीयता वाले कोई पुलिस अधिकारी प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे अपराध की जांच नहीं करेगा या बिना वारंट के इसके लिए कोई गिरफ्तारी नहीं करेगा:

परंतु यह और कि यदि सतर्कता संगठन का पुलिस उपनिरीक्षक के पद से ऊपर या उसके समकक्ष पद का कोई अधिकारी पुलिस अधीक्षक सहायक के पद से निम्न वरीयता वाले न होने वाले सतर्कता संगठन के अधिकारी द्वारा लिखित रूप से विशेष रूप से ऐसे अपराध की जांच करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो, तो ऐसा अधिकारी प्राधिकार आदेश में निर्दिष्ट ऐसे अपराध की जांच कर सकेगा। किंतु ऐसा अधिकारी ऐसी जांच के दौरान किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए सक्षम नहीं होगा जब तक कि दंड प्रक्रिया संहिता, सम्वत् 1989 की धारा 56 के अंतर्गत पुलिस उपाधीक्षक के पद से निम्न वरीयता वाले न होने वाले पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसी गिरफ्तारी को प्राधिकृत न किया गया हो।"

8.4 वर्तमान मामले में इंस्पेक्टर निसार हुसैन को जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(द) संयुक्त धारा 5(2) तथा दंड संहिता की धारा 120बी के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच करने का प्राधिकार, जो धारा 3 के द्वितीय परिशिष्ट के तहत शक्तियों का प्रयोग था, निम्नलिखित है:

"मामले की जांच प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 32/2012 धारा 5(1)(द) संयुक्त धारा 5(2) जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम सम्वत् 2006 तथा दंड संहिता की धारा 120-बी पुलिस स्टेशन सतर्कता संगठन, श्रीनगर hereby इंस्पेक्टर निसार हुसैन संख्या 4136/एनजीओ को सौंपी जाती है। उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम सम्वत् 2006 की धारा 3 संयुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 56 के अंतर्गत आरोपी व्यक्ति(ओं) को आवश्यकतानुसार कभी भी तथा कहीं भी गिरफ्तार करने का प्राधिकार दिया जाता है।

वह पुलिस अधीक्षक (बीकेबी) की देखरेख में मामले की जांच करेगा।"

इसलिए, भजन लाल (उक्त) मामले में इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया था 1947 अधिनियम की धारा 5ए तथा उपर्युक्त प्राधिकार। जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 3 में प्रयुक्त शब्दावली पूर्णतः भिन्न तथा अलग है तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 5ए की शब्दावली से, जो भजन लाल (उक्त) मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार हेतु आई थी। भजन लाल (उक्त) मामले में इस न्यायालय के अवलोकन तथा निर्णय को इस न्यायालय ने राम सिंह (उक्त) मामले में अनुच्छेद 13 से 15 में विचार किया तथा समझाया है, जैसा कि निम्नलिखित है:

13. भजन लाल मामले [1992 Supp (1) SCC 335] में इसी आधार पर की गई जांच तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न कार्यवाही को रद्द करने की बात कही गई है। उस मामले के तथ्य इस प्रकार थे कि धर्मपाल ने हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री च. भजन लाल के विरुद्ध शिकायत प्रस्तुत की जिसमें उनके विरुद्ध कुछ गंभीर आरोप लगाए गए थे जो प्रथम दृष्टया अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के कमीशन को दर्शाते थे। शिकायत 12-1-1987 को मुख्यमंत्री सचिवालय में प्रस्तुत की गई जब श्री भजन लाल मुख्यमंत्री पद से पदत्याग कर चुके थे। मुख्यमंत्री सचिवालय में विशेष कर्तव्य अधिकारी द्वारा निम्नलिखित समर्थन किया गया: "मुख्यमंत्री ने देखा। उचित कार्यवाही हेतु" तथा इसे पुलिस महानिदेशक को प्रेषित किया गया

जिन्होंने उसी दिन समर्थन किया जिसमें लिखा था: "कृपया देखें; आवश्यक कार्यवाही करें तथा प्रतिवेदन दें" तथा इसे हिसार के पुलिस अधीक्षक को प्रेषित किया। उपर्युक्त विशेष कर्तव्य अधिकारी तथा पुलिस महानिदेशक के समर्थन सहित शिकायत 21-11-1987 को पुलिस अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत की गई जिस पर पुलिस अधीक्षक ने समर्थन किया जिसमें लिखा था "कृपया मामला दर्ज करें तथा जांच करें"। पुलिस स्टेशन के स्टेशन हाउस अधिकारी ने शिकायत में वर्णित आरोपों के आधार पर दंड संहिता, 1860 की धारा 161 तथा 165 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के अंतर्गत मामला दर्ज किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति मजिस्ट्रेट तथा संबंधित अन्य अधिकारियों को प्रेषित करने के पश्चात्, स्टेशन हाउस अधिकारी ने जांच आरंभ की तथा अपने स्टाफ के साथ घटनास्थल पर प्रस्थान किया। इस अवस्था पर श्री भजन लाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 तथा 227 के अंतर्गत रिट याचिका संख्या 9172 सन् 1987 दाखिल की जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट रद्द करने तथा पुलिस को जांच आगे जारी रखने से रोकने हेतु निर्देश जारी करने की प्रार्थना की गई। उच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि शिकायत में लगाए गए आरोप वैध जांच आरंभ करने हेतु संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते तथा याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थित राहत प्रदान की। उपर्युक्त निर्णय से असंतुष्ट होकर हरियाणा राज्य ने इस न्यायालय में अपील प्रस्तुत की जिसका निपटारा निम्नलिखित रूप से किया गया:

हम उच्च न्यायालय के प्रथम सूचना प्रतिवेदन को अस्वीकृत करने वाले निर्णय को पूर्वोक्त कारणों से विधि एवं तथ्यात्मक रूप से कानून के अनुसार टिकाऊ न होने के आधार पर रद्द करते हैं; किन्तु तथापि, हम तृतीय अपीलकर्ता (थानाध्यक्ष) द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5-क (1) के अर्थ में वैध विधिक प्राधिकार से संपन्न न होने के आधार पर, इस निर्णय में द्वारा दिए गए कारणों से जांच की शुरुआत के साथ-साथ अब तक की गई सम्पूर्ण जांच, यदि कोई हो, को रद्द करते हैं। इसके अतिरिक्त हम उच्च न्यायालय के द्वारा प्रथम प्रतिवादी (चौधरी भजन लाल) को द्वितीय प्रतिवादी (धर्मपाल) द्वारा देय लागत प्रदान करने के आदेश को रद्द करते हैं।

परिणामस्वरूप, अपील इस प्रकार निपटाई जाती है किन्तु साथ ही राज्य सरकार को यह स्वतंत्रता प्रदान करते हुए कि यदि वह इच्छुक हो तो अधिनियम की धारा 5-क(1) का

कड़ाई से पालन करते हुए वैध विधिक प्राधिकार से संपन्न सक्षम पुलिस अधिकारी के माध्यम से पुनः जांच का निर्देश दे सके। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

उक्त मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में इस न्यायालय ने स्वयं को निम्नलिखित शब्दों में प्रश्न प्रस्तुत किया था:

"अब विचारणीय यह शेष रह गया है कि क्या धारा 5 के उपधारा (1) के खंड (e) के अंतर्गत आने वाले अपराध की जांच हेतु तृतीय अपीलकर्ता को जांच करने की अनुमति देने वाला कोई वैध पुलिस अधीक्षक का आदेश है। जैसा कि हमने इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में पहले ही उल्लेख किया है, पुलिस अधीक्षक (द्वितीय अपीलकर्ता) ने 21-11-1987 को एक शब्दीय निर्देश 'जांच करें' दिया है। प्रश्न यह है कि क्या एक शब्दीय निर्देश 'जांच करें' धारा 5-क (1) के द्वितीय परंतुक के अर्थ में 'आदेश' के रूप में माना जाएगा।"

न्यायालय ने तथ्यों पर पाया कि पुलिस अधीक्षक द्वारा थानाध्यक्ष को जांच का निर्देश देते समय कोई कारण ही नहीं दिया गया था, अतः पुलिस अधीक्षक का आदेश विधि की घोषणा का प्रत्यक्ष उल्लंघन था। अतः थानाध्यक्ष को 1947 अधिनियम की धारा 5-क (1) के द्वितीय परंतुक के अर्थ में धारा 5(1)(e) के अंतर्गत अपराधों की जांच हेतु अपेक्षित विधिक प्राधिकार प्राप्त नहीं पाया गया। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया कि (1) अनुमति प्रदान करने के लिए कारण प्रकट करने का लाभकारी विधिक आवश्यकताओं का पालन नहीं किया गया, (2) अभियोजन पक्ष पुलिस अधीक्षक को थानाध्यक्ष को मामले की जांच का निर्देश देने के लिए प्रेरित करने वाली परिस्थितियों का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे पा रहा है, (3) उक्त निर्देश स्पष्ट रूप से यांत्रिक एवं अत्यंत लापरवाह ढंग से, इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की परवाह किए बिना दिया गया प्रतीत होता है, तथा (4) थानाध्यक्ष को न तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 एवं 165 के अंतर्गत अपराधों की जांच हेतु मजिस्ट्रेट से कोई आदेश प्राप्त था और न ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(e) के अंतर्गत अपराधों की विधि के अनुसार ज्ञात तरीके से जांच हेतु पुलिस अधीक्षक से कोई आदेश प्राप्त था, अतः केवल "जांच करें" लिखा निर्देश विधिक दोष से ग्रस्त था। न्यायालय ने पाया कि पुलिस अधीक्षक के निर्देश एवं उसके पश्चात की जांच को रद्द करने के बावजूद

यह हरियाणा राज्य को प्रथम सूचना प्रतिवेदन के अनुसरण में मामले का पीछा करने एवं यदि राज्य इच्छुक हो तो पुनः जांच का निर्देश देने से किसी प्रकार से निवारित नहीं करेगा।

14. इस चरण पर यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने *एच.एन. रिशबुद बनाम दिल्ली राज्य* [एआईआर 1955 एससी 196] में यह निर्णय दिया था कि जांच में कोई दोष या अवैधता, चाहे वह कितनी ही गंभीर हो, संज्ञान लेने या विचारण संबंधी क्षमता या प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालती। 1947 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध के संदर्भ में दंड प्रक्रिया संहिता (1898) की धारा 190, 193, 195 से 199 तथा 537 के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने निर्णय दिया:

"जांच में कोई दोष या अवैधता, चाहे वह कितनी ही गंभीर हो, संज्ञान लेने या विचारण संबंधी क्षमता या प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालती। निस्संदेह पुलिस प्रतिवेदन जो जांच से उत्पन्न होता है, उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में संज्ञान लेने के लिए सामग्री के रूप में प्रदान किया गया है। किन्तु यह स्थापित नहीं किया जा सकता कि वैध एवं विधिक पुलिस प्रतिवेदन न्यायालय की संज्ञान लेने की अधिकार क्षेत्र की नींव है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 'कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए अपेक्षित शर्तें' शीर्षक के अंतर्गत आने वाले धारा समूह में से एक है। इस धारा की भाषा उसी शीर्षक के अंतर्गत आने वाली अन्य धाराओं अर्थात् धारा 193 एवं 195 से 199 की भाषा से पूर्णतः भिन्न है।"

15.ये बाद वाली धाराएं न्यायालय की क्षमता का नियमन करती हैं तथा कुछ मामलों में उसके अधिकार क्षेत्र को प्रतिबंधित करती हैं सिवाय इसके कि उनका पालन किया जाए। किन्तु धारा 190 ऐसा नहीं करती। निस्संदेह, एक दृष्टि से, धारा 190(1) के खंड (a), (b) एवं (c) संज्ञान लेने के लिए अपेक्षित शर्तें हैं, किन्तु यह कहना संभव नहीं है कि अवैध पुलिस प्रतिवेदन पर संज्ञान लेना निषिद्ध है तथा अतः शून्य है। ऐसा अवैध प्रतिवेदन अभी भी धारा 190(1) के खंड (a) या (b) के अंतर्गत आ सकता है, (यह किसके अंतर्गत आता है इस पर विचार करने का हमें आवश्यकता नहीं है) तथा किसी भी स्थिति में इस प्रकार लिया गया संज्ञान केवल विचारण से पूर्व की कार्यवाही में त्रुटि की प्रकृति का है। ऐसी स्थिति पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 जो निम्नलिखित शब्दों में है, लागू होती है:

'यहां पहले वर्णित प्रावधानों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकार क्षेत्र वाली किसी न्यायालय द्वारा पारित कोई निर्णय, दंडादेश या आदेश अपील या पुनरीक्षण में शिकायत, समन, वारंट, अभियोग, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या विचारण से पूर्व या दौरान या इस संहिता के अंतर्गत किसी जांच या अन्य कार्यवाही में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण उलटया या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता ने वास्तव में न्याय की विफलता का कारण न बने।'

अतः, यदि जांच संबंधी किसी अनिवार्य प्रावधान के उल्लंघन से दोषपूर्ण पुलिस प्रतिवेदन पर वास्तव में संज्ञान लिया जाता है, तो उसके पश्चात होने वाले विचारण का परिणाम रद्द नहीं किया जा सकता जब तक कि जांच में अवैधता को न्याय की गड़बड़ी का कारण सिद्ध न किया जाए। जांच के दौरान की गई अवैधता का विचारण हेतु न्यायालय की क्षमता एवं अधिकार क्षेत्र पर प्रभाव न पड़ने का मामला अच्छी तरह से निपटाया गया है जैसा कि निम्नलिखित मामलों से स्पष्ट है–'*पर्बू बनाम सम्राट* [एआईआर 1944 पीसी 73] तथा '*लुंबहारदार जुत्शी बनाम राजा* [एआईआर 1950 पीसी 26]'।

इसने आगे निर्णय दिया:

"अतः हमारी राय में, जब ऐसी उल्लंघन को विचारण के प्रारंभिक चरण में न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तो न्यायालय को उल्लंघन की प्रकृति एवं सीमा पर विचार करना होगा तथा अधिनियम की धारा 5-क की अपेक्षाओं के संदर्भ में पूर्णतः या आंशिक रूप से तथा उसके द्वारा उपयुक्त समझे जाने वाले ऐसे अधिकारी द्वारा पुनर्जांच हेतु उपयुक्त आदेश पारित करने होंगे। उपरोक्त विचारों के प्रकाश में अधिनियम की धारा 5(4) के उल्लंघन संबंधी आपत्ति की वैधता या अन्यथा का निर्णय करना होगा तथा इन कार्यवाहियों में अपनाने योग्य पथ का निर्धारण करना होगा।"

भजन लाल मामले [1992 सप्ले (1) एससीसी 335] में इस न्यायालय ने तथ्यों पर पाया था कि पुलिस अधीक्षक ने स्थापित विधिक सिद्धांतों की परवाह किए बिना यांत्रिक एवं अत्यंत लापरवाह ढंग से आदेश पारित किया था। अधिनियम की धारा 17 का पालन नहीं किया गया था। जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है पुलिस अधीक्षक ने थानाध्यक्ष को जांच का प्राधिकार देते समय केवल "कृपया मामले को दर्ज करें एवं जांच करें" के प्रभाव वाला अनुमोदन

किया था। पुलिस अधीक्षक को न तो आरोपों का ज्ञान था और न अपराधों की प्रकृति का तथा निरीक्षक द्वारा जांच की आवश्यकता वाले कार्यभार के दबाव का। इन अपीलों में प्रतिवादियों के विरुद्ध मामलों में यह तथ्य नकारा नहीं गया है कि पुलिस अधीक्षक के प्राधिकार के अभाव में भी जांच अधिकारी को विधि द्वारा अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत आने वाले अपराध की जांच का प्राधिकार प्राप्त था सिवाय एक अपवाद के जो अधिनियम की उपधारा (1)(e) के अंतर्गत वर्णित है। प्रथम सूचना प्रतिवेदन के पंजीकरण के पश्चात इन अपीलों में पुलिस अधीक्षक को प्रतिवादियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों, उनके विरुद्ध पंजीकृत प्रथम सूचना प्रतिवेदन तथा लंबित जांच का जागरूक एवं सचेत पाया गया है। राम सिंह के मामले में 12-12-1994 को 1992 में पंजीकृत अपराध के संबंध में पुलिस अधीक्षक द्वारा पारित आदेश निम्नलिखित प्रभाव का था:"

"1988 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत मुझे प्रदत्त प्रावधानों के अधिकार का प्रयोग करते हुए मैं, पी.के. रुणवाल, पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, प्रभाग I, लोकायुक्त कार्यालय, ग्वालियर प्रभाग, ग्वालियर (म.प्र.), ने श्री डी.एस. राणा, निरीक्षक (एसपीई), लाक-ग्वल (म.प्र.) को 1988 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(e), 23(2) के अंतर्गत 1992 का अपराध संख्या 103, मध्य प्रदेश, बटुल, आबकारी, डीओ श्री राम सिंह के विरुद्ध जांच करने का प्राधिकार प्रदान किया।"

अन्य दो मामलों में भी इसी प्रकार के आदेश पारित किए गए हैं। निरीक्षक को जांच सौंपने के कारणों को स्वयं आदेश से समझा जा सकता है। अतः अपीलकर्ता राज्य का यह तर्क सही है कि भजन लाल मामले [1992 सप्ले (1) एससीसी 335] के तथ्य भिन्न हैं क्योंकि वर्तमान मामले में पुलिस अधीक्षक ने विवेक का प्रयोग किया प्रतीत होता है तथा मामले की विशिष्ट परिस्थितियों के अंतर्गत निरीक्षक द्वारा जांच का प्राधिकार प्रदान करने वाला आदेश पारित किया है। जांच सौंपने के कारण स्पष्ट थे। उच्च न्यायालय को अधिनियम के प्रावधानों का उदारतापूर्ण निर्माण अभियुक्त के पक्ष में नहीं करना चाहिए था जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक अधिकारियों की अवैध एवं भ्रष्ट प्रथाओं को रोकने के लिए विधि द्वारा अधिनियमित अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के कमीशन संबंधी प्रतिवादियों के विरुद्ध गंभीर आरोपों के विचारण का समापन हो गया। हमारे ध्यान में लाया गया है कि समान परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने श्री राम बाबू गुप्ता के विरुद्ध पंजीकृत मामले में जांच एवं उसके परिणामी कार्यवाहियों को

रद्द कर दिया था जिसके विरुद्ध इस न्यायालय में आपराधिक अपील संख्या 1754 ऑफ 1986 दायर की गई थी जिसे 27-9-1986 को उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए तथा विचारण न्यायालय को विधि एवं उसमें किए गए अवलोकनों के प्रकाश में मामले के साथ आगे बढ़ने का निर्देश देते हुए अनुमत कर दिया गया था।

15 .हम उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष से संतुष्ट नहीं हैं कि केवल इसलिए कि पुलिस अधीक्षक का आदेश टाइपित प्रोफार्मा में था, उससे विवेक के अनुप्रयोग का पता चलता है या उसे यांत्रिक एवं लापरवाह ढंग से पारित माना जा सकता है। जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है आदेश स्पष्ट रूप से अभियुक्त का नाम, प्रथम सूचना प्रतिवेदन का संख्या, अपराध की प्रकृति तथा पुलिस अधीक्षक की शक्ति का संकेत देता है जो उसे कनिष्ठ अधिकारी को जांच का प्राधिकार प्रदान करने की अनुमति देती है। प्रथम सूचना प्रतिवेदन के पंजीकरण एवं धारा 17 के द्वितीय परंतुक के अनुसार प्राधिकार के बीच का समय विवेक के अनुप्रयोग तथा पुलिस अधीक्षक के समक्ष रहे परिस्थितियों को और स्पष्ट करता है जिनके भार से उन्होंने जांच का आदेश देने हेतु प्राधिकार का निर्देश दिया।"

8.5 इसके पश्चात्, 1988 के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत

अधिकारों का प्रयोग करते हुए जांच अधिकारी को प्राधिकार प्रदान करने वाले आदेश का उल्लेख करते हुए जिसमें अभियुक्त का नाम, प्रथम सूचना प्रतिवेदन का संख्या, अपराध की प्रकृति तथा

पुलिस अधीक्षक की शक्ति का संकेत है जो उसे कनिष्ठ अधिकारी को जांच का प्राधिकार प्रदान करने की अनुमति देती है, धारा 17 के द्वितीय परंतुक के अनुसार प्रथम सूचना प्रतिवेदन के पंजीकरण एवं प्राधिकार के बीच का समय, इस न्यायालय ने इस प्रकार के प्राधिकार को वैध घोषित किया है।

8.6 वर्तमान मामले में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा

निरीक्षक निसार हुसैन को जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(d)

पढ़ते हुए 5(2) तथा रणबीर दंड संहिता की धारा 120-बी के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच का प्राधिकार प्रदान करने में उनके द्वारा विवेक का अनुप्रयोग नहीं किया गया। ध्यान देने योग्य है कि उक्त अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच हेतु प्राधिकृत निरीक्षक निसार हुसैन को आवश्यकतानुसार आरोपी व्यक्तियों को कब और जहां आवश्यक हो गिरफ्तार करने का भी प्राधिकार प्रदान किया गया था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त प्राधिकार में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि वह पुलिस अधीक्षक (बीकेबी) की देखरेख में मामले की जांच करेगा। अतः वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा निरीक्षक निसार हुसैन को जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच का प्राधिकार प्रदान करते समय सभी सावधानियां बरती गई हैं।

यह भी सामान्य रूप से ध्यान देने योग्य है कि धारा 3 के द्वितीय परंतुक का सरल पठन करने पर केवल दो आवश्यकताओं का पालन करना आवश्यक है, अर्थात् (i) सतर्कता संगठन के पुलिस उप-अधीक्षक के पद से न्यूनतम पद के अधिकारी द्वारा पुलिस उप-निरीक्षक के पद से न्यूनतम पद के अधिकारी को ऐसे अपराधों की जांच हेतु लिखित प्राधिकार प्रदान करना; तथा (ii) प्राधिकृत ऐसा अधिकारी प्राधिकार आदेश में निर्दिष्ट ऐसे अपराधों की जांच कर

सके। अतः, इस प्रकार, न तो विशेष कारणों को देने की आवश्यकता है और न ही कारणों का उल्लेख करने की आवश्यकता है। विचारणीय यह है कि क्या अपराधों तथा प्राधिकार संबंधी प्रासंगिक प्रावधानों के संबंध में विवेक का अनुप्रयोग किया गया है। ऊपर पुनः प्रस्तुत प्राधिकार पर विचार करने पर यह नहीं कहा जा सकता कि निरीक्षक निसार हुसैन को जम्मू-कश्मीर

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(d) पढ़ते हुए 5(2) तथा आरपीसी की धारा 120बी के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच का प्राधिकार प्रदान करने वाला ऐसा प्राधिकार दोषपूर्ण माना जा सकता है या शून्य माना जा सकता है जो सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों सहित प्रथम सूचना प्रतिवेदन को रद्द करने की मांग करता हो। अतः, इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने गंभीर त्रुटि की है जब उसने निरीक्षक निसार हुसैन के पक्ष में प्राधिकार को विधि के अनुसार दोषपूर्ण मानते हुए सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर दिया, *भजन लाल* मामले (उक्त) में इस न्यायालय द्वारा किए गए अवलोकनों पर निर्भर करते हुए, जिसकी व्याख्या इस न्यायालय ने *राम सिंह* मामले (उक्त) में उपरांत की है। हमारी राय है कि मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा धारा 3 के द्वितीय परंतुक के सहित प्राधिकार पर विचार करने

पर प्राधिकार को अवैध या अमान्य नहीं कहा जा सकता।

9 .अब जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अनुपालन न करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष के संबंध में, ध्यान देने योग्य है कि उच्च न्यायालय ने अवलोकन किया है कि जांच एजेंसी द्वारा गैर-संज्ञेय अपराध सहित अपराध समूह की जांच हेतु जांच आरंभ करने से पूर्व संबंधित मजिस्ट्रेट से अनुमति प्राप्त करनी चाहिए तथा वर्तमान मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट से ऐसी कोई अनुमति प्राप्त नहीं की गई है, किन्तु ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान प्रतिवादी के विरुद्ध मुख्य अपराध जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 के अंतर्गत थे तथा अधिनियम की धारा 3 के अनुसार अधिनियम के अंतर्गत

सभी अपराध संज्ञेय एवं गैर-जमानती हैं। अतः, उक्त मुद्दा इस न्यायालय के प्रवीण *चंद्र मोदी* मामले (उक्त) के निर्णय के दृष्टिगत प्रतिवादी के विरुद्ध पूर्णतः कवर है। पैराग्राफ 6 में

निम्नलिखित रूप से अवलोकन एवं निर्णय किया गया है:

"6. धारा 156(2) का प्रावधान है कि जहां धारा 156(1) के अंतर्गत पुलिस अधिकारी किसी अपराध की जांच करता है तो उसकी कार्यवाही को इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता कि उसे अपराध की जांच करने का प्राधिकार नहीं था। जांच एक एकीकृत जांच थी जो एक ही तथ्यों के समुच्चय पर आधारित थी। भले ही आवश्यक वस्तु अधिनियम के अंतर्गत अपराध गैर-संज्ञेय हो–यद्यपि याचिकाकर्ता द्वारा यह आरोपित नहीं किया गया कि वह गैर-संज्ञेय है–पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध के संबंध में धारा 173 के अंतर्गत आरोप-पत्र में इसे सम्मिलित करने का प्राधिकार प्राप्त होगा। राम कृष्ण दलमिया बनाम राज्य [एआईआर (1958) पीबी 172] में न्यायमूर्ति फालशॉ, (जैसा कि तब थे) ने अवलोकन किया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155(1) के प्रावधानों को केवल उन मामलों पर लागू माना जाना चाहिए जहां पुलिस को दी गई सूचना केवल गैर-संज्ञेय अपराध संबंधी हो। जहां सूचना संज्ञेय तथा गैर-संज्ञेय दोनों अपराधों का प्रकटीकरण करती है वहां पुलिस अधिकारी को एक ही तथ्यों से उत्पन्न होने वाले किसी भी गैर-संज्ञेय अपराध की जांच करने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता। वह संज्ञेय अपराध के लिए प्रस्तुत आरोप-पत्र में उस गैर-संज्ञेय अपराध को सम्मिलित कर सकता है। हम पूर्णतः सहमत हैं। यदि दोनों अपराध संज्ञेय हों तो संहिता के अध्याय XIV के अंतर्गत एक साथ जांच की जा सकती है और यदि उनमें से एक गैर-संज्ञेय अपराध हो तो भी।"

10.वर्तमान मामले में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अपराध मुख्य अपराध है तथा पीसी अधिनियम के अंतर्गत अपराध हेतु जांच को षड्यंत्र के अपराध के साथ संयोजित रूप से विचार करने पर मजिस्ट्रेट से पूर्वानुमति की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल इसलिए कि षड्यंत्र का अपराध सम्मिलित हो सकता है, मुख्य अपराध अर्थात् वर्तमान मामले में पीसी अधिनियम के अंतर्गत संज्ञेय अपराध हेतु जांच को मजिस्ट्रेट से अनुमति का इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे पर्याप्त विलंब होगा, जांच प्रभावित होगी तथा जांच पटरी से उतर जाएगी। तः, उच्च न्यायालय ने धारा 120बी के अंतर्गत गैर-संज्ञेय अपराध होने के

आधार पर जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के अंतर्गत अपेक्षित पूर्वानुमति प्राप्त न करने के आधार पर आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने में त्रुटि की है। उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण इस न्यायालय के प्रवीण चंद्र मोदी मामले (उक्त) में प्रतिपादित विधि के पूर्णतः विपरीत है, जिस पर इस न्यायालय ने उपरांत *बृज लाल पालता* मामले (उक्त), *सत्य नारायण मुसादी* मामले (उक्त), *मदन लाल* मामले (उक्त) तथा *भंवर सिंह* मामले (उक्त) में निर्भरता की है।

11.उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादास्पद निर्णय एवं आदेश के उस भाग के संबंध में जिसमें 2008 सतर्कता मैनुअल के नियम 3.16 को अल्पक्षम घोषित किया गया है, ध्यान देने

योग्य है कि नियम 3.16 भी इस न्यायालय के ललिता कुमारी मामले (उक्त) में किए गए अवलोकनों तथा प्रतिपादित विधि के अनुरूप कहा जा सकता है। नियम 3.16 निम्नलिखित है:

"खंड 3.16 - प्रारंभिक जांच (पीई)

जब कोई शिकायत या सूचना सार्वजनिक सेवक के आचरण में अनियमितता का पर्याप्त सामग्री प्रकट करती हो जिसकी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अंतर्गत मामले के पंजीकरण से पूर्व विस्तृत सत्यापन की आवश्यकता हो, तो प्रारंभिक जांच (पीई) का आदेश दिया जा सकता है। पीई सामान्यतः छह माह की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए। पीई को दिए गए प्रोफार्मा (परिशिष्ट क) पर पंजीकृत किया जाएगा। कभी-कभी न्यायालय भी राज्य सतर्कता संगठन द्वारा जांच का आदेश देते हैं। ऐसी प्रारंभिक जांचें भी सतर्कता आयुक्त के अनुमोदन के पश्चात पंजीकृत की जानी चाहिए। जैसे ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाए जो प्रथम दृष्टया भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत संज्ञेय अपराध के कमीशन को सिद्ध करे, पीई को केंद्रीय कार्यालय के पूर्व सहमति से प्रथम सूचना प्रतिवेदन में परिवर्तित किया जा सकता है। जब उपलब्ध सामग्री केवल अनियमितता के तत्वों का संकेत दे तथा आपराधिक अनियमितता का नहीं, तो विभागीय कार्रवाई हेतु उपयुक्त अनुशासनात्मक प्राधिकारी को स्व-निहित टिप्पणी भेजी जानी चाहिए।"

12. नियम/खंड 3.16 का निकट पठन करने पर यह देखा जा सकता है कि यह भी अभियुक्त के हित में तथा/या जिसके विरुद्ध आरोप लगाए गए हैं उस व्यक्ति के हित में तथा अभियुक्त को तुच्छ शिकायतों से बचाने के लिए कहा जा सकता है। खंड 3.16 के अनुसार केवल प्रारंभिक जांच के संचालन के बाद तथा प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर ही प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने की आवश्यकता है। अपराधों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विस्तृत जांच आवश्यक है तथा इसलिए खंड 3.16 में अवलोकन किया गया है कि पीई सामान्यतः छह माह की अवधि में पूर्ण की जानी चाहिए। प्रतिवादी की ओर से यह मामला है तथा विवादास्पद निर्णय एवं आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा भी अवलोकन एवं निर्णय किया गया है कि इस न्यायालय के ललिता कुमारी मामले (उक्त) में प्रतिपादित विधि के अनुसार आरोपों की गुण पर विस्तृत जांच हेतु प्रारंभिक जांच रखने की आवश्यकता नहीं है तथा ऐसी जांच को 7 दिनों की अवधि में पूर्ण करने संबंधी बात है, किन्तु ध्यान देने योग्य है कि ललिता कुमारी मामले (उक्त) में यह निर्णय नहीं दिया गया है कि यदि प्रारंभिक जांच 7 दिनों की अवधि में पूर्ण नहीं की जाती है तो सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियां शून्य हो जाएंगी तथा उन्हें रद्द किया जाना होगा।

13. अब प्रतिवादी की ओर से यह तर्क कि वर्तमान मामले में प्रारंभिक जांच के संचालन द्वारा विस्तृत जांच कर ली गई है तथा उसके पश्चात ही प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत किया गया है तथा प्रारंभिक जांच के समय प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज होने के कारण जांच की अनुमति नहीं है, संबंधी तर्क आकर्षक प्रतीत होता है किन्तु उसमें कोई सार नहीं है। खंड 3.16 के अंतर्गत प्रारंभिक जांच करते समय जो भी संचालित किया जाता है वह आरोपों की जांच के रूप में होगा ताकि यह विचार किया जा सके कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं जिसके लिए प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने के पश्चात् आगे

जांच की आवश्यकता है। प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने के उद्देश्य हेतु प्रथम दृष्टया मामला विचारते समय कुछ जांच/अन्वेषण अवश्य होगा, किन्तु वह केवल प्रथम सूचना प्रतिवेदन

पंजीकृत करने के उद्देश्य हेतु प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही होगा। प्रारंभिक जांच के चरण में जो भी जांच संचालित की जाती है उसे कल्पना की सर्वथा सीमा से परे दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जांच नहीं माना जाएगा जो केवल प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने के पश्चात् हो सकती है। भले ही अन्यथा हो, केवल इसलिए कि प्रारंभिक जांच करते समय प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों में विस्तृत जांच की गई है जो उपर्युक्त रूप से केवल प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने के उद्देश्य हेतु प्रथम दृष्टया मामला खोजने के लिए ही थी तथा केवल इसलिए कि प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच संचालित करने में कुछ अधिक समय लगा लिया है, सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक जांच के चरण में अभियुक्त को कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा जो उपर्युक्त रूप से केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों के संबंध में प्रथम दृष्टया मामला बनने की संतुष्टि हेतु तथा प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीकृत करने के पश्चात् आगे जांच की आवश्यकता है या नहीं, यह जानने के उद्देश्य के लिए ही होगी। अतः, उच्च न्यायालय ने खंड 3.16 को अल्पक्षम घोषित करने में सामग्री त्रुटि की है।

14. अब उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए उठाया गया चौथा आधार/प्रश्न अर्थात् मुख्य षड्यंत्रकारियों - निजी लिमिटेड कंपनियों तथा/या उनके प्रभारी व्यक्तियों के अभाव में प्रतिवादी को विकरियस दायित्व के अंतर्गत उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, संबंधी बात पर ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी के विरुद्ध आरोप उसके व्यक्तिगत स्वरूप के संबंध में हैं। निजी लिमिटेड कंपनियों के निदेशकों के अतिरिक्त प्रतिवादी

संख्या 1 तथा अन्य अधिकारियों को भी अभियुक्त के रूप में सम्मिलित किया गया है। अतः विकरियस दायित्व का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता तथा उच्च न्यायालय द्वारा किया गया अवलोकन कि मुख्य षड्यंत्रकारियों - निजी लिमिटेड कंपनियों तथा/या उनके प्रभारी व्यक्तियों के अभाव में प्रतिवादी संख्या 1 को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, अस्वीकृत है तथा स्वीकार्य नहीं है। उच्च न्यायालय ने उक्त आधार पर सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने में त्रुटि की है।

15.उपर्युक्त दृष्टिगत तथा उपर्युक्त कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादास्पद निर्णय एवं आदेश जिसमें जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(d) पढ़ते हुए 5(2) तथा रणबीर दंड संहिता की धारा 120बी के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन संख्या 32/2012 से उत्पन्न सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द किया गया है तथा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, वोक, श्रीनगर द्वारा 16.11.2012 को पारित सौंप आदेश को रद्द एवं निरस्त किया गया है जिसमें निरीक्षक निसार हुसैन को जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(d) पढ़ते हुए 5(2) तथा रणबीर दंड संहिता की

धारा 120बी के अंतर्गत अपराधों हेतु प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच का प्राधिकार प्रदान किया गया था तथा 2008 सतर्कता मैनुअल के नियम/खंड 3.16 को प्रारंभिक जांच (पीई) से संबंधित अल्पक्षम घोषित एवं माना गया है, अस्वीकृत है तथा रद्द एवं निरस्त किए जाने के योग्य है तथा इस प्रकार रद्द एवं निरस्त किया जाता है। प्रतिवादी के विरुद्ध प्रथम सूचना प्रतिवेदन/आपराधिक कार्यवाहियां संख्या 32/2012 जम्मू-कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 2006 की धारा 5(1)(d) पढ़ते हुए 5(2) तथा रणबीर दंड संहिता की धारा 120बी के अंतर्गत अपराधों हेतु प्राधिकृत अधिकारी द्वारा शीघ्रता से जांच की जानी है तथा आगे बढ़ाई जानी है।

16.वर्तमान अपील इस प्रकार अनुमत की जाती है।

देविका गुजराल अपील स्वीकार कर ली गई।

यह अनुवाद पीयूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|